गुरु-महिमा का छोर नहीं

श्रीमती अभिलाषा हीरावत

गुरु के वैशिष्ट्य एवं महिमा पर यह भावपूर्ण लघु निबन्ध उनके प्रति भक्ति तथा समर्पण के लिए प्रेरित करता है। **-सम्पादक**

परमश्रद्धेय श्री प्रमोद मुनि जी म.सा. फरमाते हैं-

''अनन्त धैर्य, अशेष क्षमा, अमित शान्ति
अविरल दया, अवितथ संयम, अद्भुत मनःसंयम,
आसान शय्या, अल्प वस्त्र, अतुलनीय ज्ञानामृत भोजन
बँधु कुटुम्बी, भय कहाँ योगी?''

उपर्युक्त विशेष विशेषणों को पढ़ते-सुनते ही स्वतः आत्मा के अनवरत आनन्द-सरोवर में तन्मय, अपने केन्द्र पर स्थित गुरु का सजीव चित्रण समक्ष प्रतिबिम्बित हो जाता है।

वैसे तो लोक व्यवहार में माता-पिता और शिक्षक को गुरु माना जाता है, पर मोक्षमार्ग में आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीनों गुरु कहलाते हैं। यहाँ गुरुता, महानता या पूज्यता वीतरागता के होने पर ही आती है। वीतरागता कसौटी है पूज्यता की।

कहते हैं माँ की ममता का जगत में कोई ओर छोर नहीं है, पर माँ की ममता ससीम होती है। वह अपने अंगजात के लिए ही होती है और गुरु असीम आत्मीयता और वात्सल्य के अनन्त आकाश होते हैं, उनमें अनेक माँओं की ममता समाई होती है, जो प्राण, भूत, जीव एवं सत्त्व सभी के लिए बिना भेदभाव के सदा ही प्रवाहित होती है। गुरु का वात्सल्य सदैव स्फूर्तिदायक होता है। माता-पिता जन्म देते हैं, किन्तु गुरु जीवन बनाता है, जिन्दगी सार्थक रूप में जीना सिखलाता है। गुरु अमृत का वह महासागर है जिसकी हर बूँद कुबेर के खजाने से कम नहीं, जितना इस सागर में डुबकी लगाते हैं या गहरे उतरते चले जाते हैं उतना ही अनमोल रत्नों को सहज ही पाते चले जाते हैं। गुरु के नयनों में निःस्वार्थ वात्सल्य, हृदय में अपरिमित करुणा, दया एवं सरलता होती है। उनकी कथनी करनी एक समान होती है, अबोध बालक के समान निर्विकार छवि होती है। वे निरभिमानता, ब्रह्मचर्य के दिव्य तेज, अहिंसा के पुजारी इत्यादि अनेक गुणों से परिपूर्ण होते हैं। गुरु जिनवाणी को अन्तर्मन से अपनाते हैं, अमृत रस बरसाते हैं तथा सभी जीवों में प्रीति प्रसारित करते हैं। संत कबीरदास जी ने कहा है-

''गु अँधियारी जानिए, रु कहिए परकाश।
मिटि अज्ञाने ज्ञान दे, गुरु नाम है तास॥''

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाला ही सच्चा एवं श्रेष्ठ गुरु है। ज्ञान से धर्म होता है, अज्ञान से अधर्म होता है। जिसमें ज्ञान होता है वह धर्म को समझता है। कहते हैं जब गुरु मौन होता है तब देव होता है और बोलता है तब धर्म होता है।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने गुरु का स्वरूप बताते हुए लिखा है-

विषयाशावशातीतो, निराम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तः, तपस्वी सः प्रशस्यते।।

"जो विषयों (भौतिक सुखों) की आशा के वशीभूत नहीं होते हैं, जो पापों से विरक्त हैं या सारे सासारिक पाप कार्यों से विरक्त रहते हैं, जो अपरिग्रही हैं और सदा ज्ञान, ध्यान व तप में लीन रहते हैं ऐसे गुरु प्रशंसनीय हैं।"

रत्नत्रय अर्थात् सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र को धारण करने वाले, पाँच महाव्रत का निरतिचार पालन करने वाले, पाँच समिति तीन गुप्ति की अखण्ड पालना करने वाले, धर्म को समीचीन रूप से अपनाने वाले, भवसागर से तिरने और तारने वाले ही सुगुरु होते हैं। वे इन्द्रिय-विषयों के वशीभूत नहीं होते, धन सम्पत्ति से बाह्य और आन्तरिक परिग्रह से परे, ज्ञान ध्यान का खजाना स्वयं प्राप्त करते हैं और दूसरों में भी बाँटते हैं। सुगुरु निर्मल, विकार रहित, शान्त, मितभाषी, काम-क्रोध से मुक्त, सदाचारी, जितेन्द्रिय, आध्यात्म ज्ञान से युक्त एवं पवित्र होते हैं।

आज की तनाव भरी जिन्दगी में सहनशीलता, त्याग, परोपकार, संयम, दया, पापभीरुता इत्यादि शब्द अपना अर्थ खोने लगे हैं। आज के बौद्धिक युग में किताबी ज्ञान इतना बढ़ जाने के बावजूद भी आपाधापी, असंतोष, भौतिक लोभ-लालच, वैचारिक उलझन, तनाव और चिन्ता में कमी नहीं आई है। जब जीव अपने दुःखों परेशानियों से घबरा उठता है, अशान्त हो जाता है तो शान्ति की तलाश में इधर-उधर भटकने लगता है, उसकी तलाश सच्चे गुरु के चरणों में पहुँचकर खत्म हो जाती है। लौकिक उपकार करने वाले सैंकड़ों लोग दुनिया में हैं, परन्तु अपना आत्म-कल्याण करते हुए प्राणिमात्र के कल्याण की भावना रखने वाले सुगुरु अल्प हैं। परम श्रद्धेय श्री गौतम मुनि जी म.सा. फरमाते हैं-

"जो बात दवा से नहीं होती, वो बात हवा से होती है।
काबिले गुरु मिले तो हर बात खुदा से होती है।।"

जीव को गुरु की अनिवार्यता समझ आने लगती है। गुरु के बिना अहंकार अभिमान, क्रोध आदि कषाय राग-द्वेष आदि विभावों का विसर्जन संभव नहीं है। परम श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनि जी म.सा. फरमाते हैं-

"निश्चय कृपा गुरुदेव की, भव जल से पार लगाती है,
हारे थके निराश में पुरुषार्थ पूर्ण जगाती है,
लक्ष्य की पहचान व दृढ़ता अपूर्व दिलाती है,
अन्तभव अर्णव करा मुक्तिपुरी पहुँचाती है।"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य ही है, गुरु की कृपा निराश हताश में भी नई आशा का संचार करती है साथ ही चलने की शक्ति भी प्रदान करती है। बाहर के भटकाव को रोकने के लिए, मोक्ष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, सुगुरु के मार्गदर्शन रूपी मशाल का होना अति आवश्यक है। गुरु मिथ्यात्व के सघन गहन अंधकार को हटाकर हममें ज्ञान का प्रकाश भर देते हैं। सुगुरु जीवन्त तीर्थ हैं। उनके सान्निध्य से, मार्ग दर्शन से, उनकी अनुपम कृपा से सभी विकार विभाव स्वतः ही दूर होने लगते हैं।

जरूरत है गुरु चरणों में पूरी तरह समर्पित होने की। श्रद्धा समर्पण माँगती है। गुरु-भक्ति गुरु के अलौकिक गुणों के समीप लाने वाली शक्ति है। वह किसी सन्त विशेष का मोह नहीं, अपितु गुणी व्यक्तित्व का बहुमान है। भावों की विशुद्धिपूर्वक पूज्य पुरुषों के प्रति जो अनुराग है वही तो भक्ति कहलाती है। गुरु की भक्ति तो गंगा के समान है जिसमें कोई डूब जाए, लीन हो जाए तो उसका तन, मन और सारा जीवन पवित्र हो जाता है। पहले गुरु की आकृति काम आती है, फिर गुरु की प्रकृति आती है, क्योंकि आचार से प्रचार स्वयं होता है, आचरण स्वयं प्रेरणा देता है। सच्चे गुरु सिर्फ अपनी वाणी से ही शिष्यों को शिक्षा नहीं देते, अपितु अपने जीवन से भी मूक शिक्षा देते हैं। शिष्य उनकी वाणी से आध्यात्मिक या पारमार्थिक शिक्षा प्राप्त करता हुआ उनके जीवन से निर्लोभता, निःस्वार्थता, नैतिकता, सदाचार, चारित्र-निर्माण आदि कलाओं की शिक्षा प्राप्त करता चला जाता है। जैसे गुलाब की वाटिका में लोग सुगन्ध की याचना नहीं करते, वह स्वयं ही मिल जाती है, वैसे ही गुरु के चरणों में समर्पित होने के बाद कुछ माँगना शेष नहीं रहता। कल्पवृक्ष रूपी गुरु से प्राप्ति स्वतः होती रहती है। परम श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनि जी म.सा. फरमाते हैं-

''समर्पण की कोई भाषा नहीं, समर्पण में कोई अभिलाषा नहीं।
मैं कुछ नहीं मेरा कुछ नहीं, गुरु के चरणों में विलीन हो गए।।''

श्रद्धा को शब्दों की जरूरत नहीं पड़ती। समर्पण में कोलाहल नहीं होता। गुरु-भक्ति में विनीत भाव का दर्शन होता है, आडम्बर का नहीं। गुरुजनों के सदा निकट रहना उनकी उपासना है। परन्तु निकट रहने का मतलब यह नहीं है कि हमेशा उनके पास बैठे रहो। अपने अन्तरंग में उन्हें अपने निकट महसूस करना ही सच्ची निकटता है। जो गुरु की आज्ञा में है वह गुरु के निकट, गुरु के हृदय में होता है, भले ही वह शरीर से दूर ही क्यों न हो। जो गुरु की आज्ञा में नहीं है वह गुरु के समीप हो कर भी उनसे दूर होता है।

महान आत्माओं का दर्शन, वन्दन या उनकी भक्ति करते समय यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि 'वन्दे तद्गुणलब्धये'। मेरे दर्शन-वन्दन का उद्देश्य महान् आत्माओं के समान गुणों की प्राप्ति करने का है।

गुरुमुख एवं गुरुकृपा से सीखा हुआ ज्ञान ही जीवन में उपयोगी हो सकता है, क्योंकि पोथी से ज्ञान नहीं मात्र जानकारी मिलती है। गुरु पराश्रय परावलम्बन को छुड़ाकर निरालम्ब कर देते हैं। सुगुरु शिष्य को स्वयं के दुःख दूर करना ही नहीं सिखाते, बल्कि पर-पीड़ा को दूर करने के उपाय भी सिखलाते हैं। गुरु-शिष्य-दर्पण में गुरु के लिए लिखा है-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

''अल्पाक्षरोऽपि न तथादयोऽपि न तथाश्रितोऽपि नैव तथा।
निर्ग्रन्थोऽपि च न तथा वृत्तिविहीनोऽपि नैव तथा।।
सन्नपि गुरुत्वयुक्तो गुरुत्वमुक्तो भवेद्गुरूर्नियतम्।
नासक्तोऽप्यासक्तोऽभयोऽपि सभयोऽद्भुतश्चैवम्।।''

अर्थात् ''गुरु अल्पाक्षर होते हुए भी अल्पाक्षर नहीं होते, निर्दय होते हुए भी निर्दय नहीं होते, आश्रित होते हुए भी आश्रित नहीं होते, निर्ग्रन्थ होते हुए भी निर्ग्रन्थ नहीं होते और वृत्ति रहित होते हुए भी वृत्ति रहित नहीं होते हैं, गुरुत्व युक्त होकर भी गुरुत्व मुक्त होते हैं, अनासक्त होकर भी आसक्त होते हैं तथा नियम से भय रहित होकर भी भयसहित होते हैं इस प्रकार वे यथार्थतः अद्भुत होते हैं।''

भावार्थः– गुरु अल्पाक्षर अर्थात् अल्प बोलने वाले होते हैं, लेकिन वे अल्पाक्षर अर्थात् मन्द बुद्धि नहीं होते हैं। वे दोषों के प्रति निर्दय होकर भी प्राणियों के प्रति निर्दय नहीं होते। वे आत्माश्रित होते हैं, पराश्रित नहीं। वे निर्ग्रन्थ अर्थात् परिग्रह रहित होते हैं, पर ग्रन्थ शास्त्र रहित नहीं होते। वे वृत्ति अर्थात् आजीविका से रहित होते हैं, पर त्याग वृत्ति से रहित नहीं। वे गुरुत्व युक्त अर्थात् गुरुता से युक्त होते हुए भी गुरुत्व मुक्त अर्थात् गर्व से मुक्त होते हैं। वे विषयों में आसक्त नहीं होते पर धर्म में आसक्त होते हैं। वे अभय होते हैं क्योंकि इहलोक, परलोक, अत्राण, अगुप्ति, मरण, वेदना और आकस्मिक भय उनमें नहीं होते, किन्तु संसार-भ्रमण से भयभीत होने के कारण अभय नहीं होते।''

गुरु लघुता में गुरुता और गुरुता में लघुता का प्रत्यक्ष समन्वय होते हैं।

गुरु की महिमा का जितना गुणगान किया जाए कम है। कहा जाता है कि समुद्र भर को स्याही बना लें, पूरी पृथ्वी को पृष्ठ बना लें और माँ सरस्वती स्वयं भी सदा लिखती रहे तो भी गुरु की महिमा पूरी लिखी नहीं जा सकती। गुरु की महिमा अवर्णनीय है।

-31/548, आदर्श नगर, बंगाल केमिकल्स के पास, वर्ली, मुम्बई-400025 (महा.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org